https://doi.org/10.31995/jgv.2026.v17iSI08.020

लोक ज्ञान परंपरा में सामूहिक चेतनाः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ0 सत्या मिश्रा
प्रोफ़ेसर
समाजशास्त्र विभाग
नारी शिक्षा निकेतन पी.जी. कॉलेज, लखनऊ
ईमेलः satyamishra11@gmail.com

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 20.02.26
Approved: 15.07.26

डॉ0 सत्या मिश्रा

लोक ज्ञान परंपरा में सामूहिक चेतनाः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

Vol. XVII, Sp. Issue Aug. 2026
Article No.20, Pg. 159-162

Similarity Check: 07%

Online available at
https://anubooks.com/special-issues?url=jgv-si-apsmgpc-lkn-2026

DOI: *https://doi.org/10.31995/jgv.2026.v17iSI08.020*

सारांश

परम्परागत, सरल सामाजिक संरचना वाले आदिम, समरुपी तथा ग्रामीण समुदाय लोक समाज के उदाहरण हैं। लोक समाज में ज्ञान दिन–प्रतिदिन के अनुभव, सामाजिक व्यवहार, रीति–रिवाज, प्रथाओं, लोक कथाओं, किवदन्तियों, मुहावरों, कहावतों, गीतों तथा धार्मिक–सामाजिक अनुष्ठानों के रुप में विद्यमान रहता है। यह ज्ञान पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होता रहता है। लोक ज्ञान सूचनाओं का संकलन मात्र नहीं है अपितु यह लोक जीवन की नैतिक–सास्ँकृतिक दिशा तथा सामूहिक चेतना को भी व्यक्त करता है। सामूहिक चेतना की अवधारणा प्रसिद्ध समाजशास्त्री इमाईल दुर्खीम ने प्रतिपादित की है उनके अनुसार "सामूहिक चेतना समाज के सामान्य सदस्यों के साझा विश्वासों और भावनाओं का एक समूह है।" यांत्रिक एकता वाले आदिम एवं ग्रामीण समाज में सामूहिक चेतना अत्यंत व्यापक तथा कठोर रुप में प्रकट होती है (रावत, 2020, पष्० – 60–61)। लोक ज्ञान के माध्यम से व्यक्ति अपने 'स्व' को समुदाय से जोड़ता है जिससे उसमें सामूहिक उत्तरदायित्व का बोध विकसित होता है। लोक ज्ञान परम्परा में सामूहिक चेतना सामाजिक मानदंडों, अनुशास्तियों, वर्जनाओं, परम्पराओं के रुप में उपस्थित होकर व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित भी करती है। सामूहिक चेतना, वैश्वीकरण, आधुनिकीकरण तथा प्रभावी सोशल मीडिया के दौर में सांस्कृतिक पहचान का आधार भी बनी हुई है तथा लोक एवं ग्रामीण समाजों की निरंतरता, स्थायित्व एवं जीवंतता को संरक्षित रखे हुए है। प्रस्तुत शोध प्रपत्र में ग्राम्य समुदाय, विशेष तौर पर दो गाँवों के तुलनात्मक, नृजातिवृत्तात्मक अध्ययन के संदर्भ में लाोक ज्ञान परंपरा में सामूहिक चेतना की समाजशास्त्रीय व्याख्या की गई है।

मुख्य शब्दः *लोक समाज, सामूहिक चेतना, परम्परा, संस्कृति, ग्रामीण समाज, लोक ज्ञान, सामाजिक संरचना*

**This article has been peer-reviewed by the Review Committee of JGV.*

भूमिका

लोक ज्ञान लोक समाज की वह बौद्धिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पूँजी है जोकि औपचारिक शिक्षा से इतर तथा भिन्न; अनुभव, परम्परा एवं सामुदायिक जीवन के माध्यम से विकसित होती है व पीढ़ी दर पीढ़ी प्रायः मौखिक रुप से संचारित होती रहती है अर्थात् लोक ज्ञान सांस्कृतिक सार में निहित होता है। समाजशास्त्रीय एवं मानवशास्त्रीय दृष्टि से लोक समाज परम्परागत, ग्रामीण तथा सापेक्षतः सरल सामाजिक संरचना वाले, प्रकृति के सान्निध्य में रहने वाले, प्रबल सामुदायिक भावना वाले समाज होते हैं। लोक समाज की अवधारणा का प्रतिपादन रॉबर्ट रेडफील्ड ने अपनी पुस्तक 'लिटिल कम्युनिटी' (1960) तथा 'पीजेंट सोसायटी एण्ड कल्चर' (1956) में किया है।

प्रस्तुत अध्ययन में ग्रामीण समाज के संदर्भ में जोकि लोक समाज का उदाहरण है; में लोक ज्ञान परम्परा में निहित सामूहिक चेतना का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है। लोक ज्ञान वह स्वतः उद्भूत ज्ञान है जो किसी भी विशिष्ट समुदाय द्वारा अपने पर्यावरण एवं सामाजिक परिवेश के साथ दीर्घकालीन अन्तःक्रियाओं के परिणामस्वरुप विकसित हुआ हो। लोक ज्ञान की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नाँकित हैं–

1. अनाम उत्पत्ति अर्थात् लोक ज्ञान किसी एक लेखक, विशिष्ट व्यक्ति अथवा अविष्कारक द्वारा रचा, लिखा एवं विकसित किया गया नहीं होता है; यह एक सामूहिक सष्जन है।
2. मौखिकता अथवा मौखिक परम्परा पर आधारित लोकज्ञान एक ऐसा संकलन है जोकि लिखित ग्रन्थों के स्थान पर कहावतों, मुहावरों, लोकगीतों, लोककथाओं तथा वार्ताओं के माध्यम से जीवित रहता है।
3. अनौपचारिकता लोक ज्ञान की एक अन्य विशिष्टता है क्योंकि यह किसी औपचारिक संस्था में विकसित न होकर घर, आँगन, कृषि कार्य करते हुए, पशु चराते हुए तथा सामुदायिक उत्सवों में भाग लेते हुए सीखा जाता है।
4. परिवर्तनशीलता होने के कारण लोक ज्ञान समय एवं स्थान के अनुसार न केवल परिवर्तित होता है बल्कि सर्वदा प्रासंगिक भी बना रहता है।
5. लोक ज्ञान अनुभवजन्य है तथा सम्पूर्ण समुदाय का उस पर स्वामित्व होता है न कि किसी व्यक्ति विशेष का।
6. लोक ज्ञान सामूहिकता अथवा सामूहिक अहंवाद पर आधारित होता है।
7. लोक ज्ञान सांस्कृतिक निरन्तरता को संरक्षित रखता है।

लोक ज्ञान मात्र जानकारी एवं सूचनाओं का संग्रह नहीं है अपितु सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक निरंतरता एवं सामूहिक पहचान का आधार है जोकि दैनिक जीवन, विश्वासों, मूल्यों और व्यवहारों को दिशा प्रदान करता है। इस अध्ययन में यह उद्घाटित किया गया है कि किस प्रकार से लोक पंरपरायें, मूर्त एवं अमूर्त कलायें यथा–लोकगीत, लोककथाएँ, नाटक, लोकनृत्य, हस्तशिल्प अथवा दस्तकारी, प्रथाएँ एवं त्यौहार समाज में एक साझा चेतना का निर्माण करते हैं।

लोकज्ञान वह अनुभवजन्य एवं पंरपरागत ज्ञान है जोकि अनेक पीढ़ियों के जीवनानुभवों, पर्यावरणीय अनुकूलन एवं सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवहारों से निर्मित होता है। सामूहिक चेतना, जिसका प्रतिपादन इमाईल दुर्खीम ने किया है, के अनुसार – समाज के साझा विश्वासों, मूल्यों एवं नैतिक मानकों का एक समूह है, ग्रामीण समाज में उपर्युक्त दोनों तत्व (लोक ज्ञान तथा सामूहिक चेतना) सामाजिक समैक्य एवं निरंतरता को संरक्षित रखते हैं, सामाजिक नियंत्रण स्थापित करने तथा पहचान के निर्माण में सहायक हैं। ग्रामीण समाजों में लोकज्ञान औपचारिक शिक्षा से अर्जित किया जाने वाला ज्ञान न होकर अनुभव एवं परम्परा से समाजीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत स्वतः आत्मसात किया जाने वाला ज्ञान है। कृषि कार्य मे संलग्न कृषक परिवार, ऋतु–चक्र संबंधी ज्ञान से ओत–प्रोत वरिष्ठ जन, घरेलू, प्राकृतिक चिकित्सा का ज्ञान रखती महिलाएँ लोक ज्ञान की संवाहक हैं। ग्राम्य समाज प्रकृति, परम्परा, अनुभव एवं सामूहिकता से गहनता से जुड़ा हुआ है। लोक ज्ञान मात्र उपयोगितावादी नहीं अपितु, भावात्मक एवं सांस्कृतिक भी है। सामूहिक रुप से त्यौहार मनाना, आनुष्ठानिक/धार्मिक क्रियायें निष्पादित करना, समूह में गीत गाना और संकटकाल में उत्पन्न

https://doi.org/10.31995/jgv.2026.v17iSI08.020

होने वाला पारस्परिक सहयोग सामूहिक चेतना का जीवंत रुप है। ग्रामीण समाज में लोक ज्ञान में विद्यमान चेतना का विश्लेषण प्रमुख रुप से प्रस्तुत शोधपत्र में तीन सैद्धान्तिक आधारों पर किया गया है–

प्रथम, सामूहिक चेतना का सिद्धान्त, जिसके अंतर्गत इमाईल दुर्खीम के द्वारा प्रतिपादित विचारों के आधार पर विश्लेषण किया गया है कि परम्परागत समाजों में 'यांत्रिक एकता' पाई जाती है जहाँ व्यक्ति समान जीवन–शैली एवं विश्वासों के कारण एकीकृत रहते हैं। ग्रामीण समाज में इसी प्रकार का समैक्य एवं एकीकरण पाया जाता है।

द्वितीय, सामाजिक निर्माण का सिद्धान्त, जिसके प्रमुख व्याख्याकार पीटर एल० बर्जर तथा थॉमस लकमैन हैं; इनके अनुसार सामाजिक वास्तविकता मनुष्यों द्वारा निर्मित होती है। लोक ज्ञान इसी निर्माण की प्रक्रिया का परिणाम है।

तृतीय, संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक सिद्धान्त जिसमें प्रमुख विश्लेषकों में से एक ए० आर० रेडक्लिफ ब्राउन के अनुसार– सामाजिक संस्थायें तथा परम्परायें समाज को संरक्षित रखने व स्थिरता बनाये रखने का कार्य करती हैं। लोक ज्ञान इसी स्थिरता का प्रमुख आधार है।

प्रस्तुत शोध प्रपत्र उत्तर प्रदेश के लखनऊ जनपद के दो गाँवों के गहन, अनुभवात्मक, सहभागी अवलोकन पर आश्रित नृजातिवृत्तात्मक, अध्ययन पर आधारित है। इस अध्यन हेतु चयनित एक गाँव है बख्शी का तालाब तहसील का गोहानाकलाँ गाँव। यह गाँव समाजशास्त्रीय जगत मे विगत लगभग सात दशकों से 'मोहाना' नाम से प्रसिद्ध रहा है जिसका अध्ययन प्रो० डी० एन० मजूमदार ने किया था और इस पर आधारित कृति 'कास्ट एण्ड कम्युनिकेशन इन एन इंडियन विलेज' 1958 में प्रकाशित हुई थी। वहीं दूसरा चयनित गाँव है मोहनलाल गंज तहसील का निगोहाँ नामक गाँव। निगोहाँ गाँव वृहत् आकार का बहुजतीय एवं बहु–धार्मिक गाँव है जोकि लखनऊ–प्रयागराज राजमार्ग (राजमार्ग सं० 30) पर अवस्थित है। चूँकि दोनों ही ग्राम समुदाय सामाजिक–सांस्कृतिक रुप से अवध क्षेत्र में स्थित हैं। दोनों गाँव अवधी भाषी हैं, साथ ही खड़ी बोली भी बोली जाती है। प्रशासनिक रुप से उ० प्र० की राजधानी लखनऊ का एक भाग हैं अतः दोनों गाँवों में लोकज्ञान परम्परा में विद्यमान सामूहिक चेतना संबंधी तथ्यों एवं सूचनाओं में अत्यंत समानता पाई गयी है। दोनों गाँवों की लोक ज्ञान पंरपरा में निहित सामूहिक चेतना की व्याख्या निम्नाँकित बिन्दुओं के अंतर्गत की जा सकती है–

1. पारिस्थतिकीय / भोगोलिक / कृषि संबंधी ज्ञान में सामूहिक चेतना विद्यमान पाई गई है।
2. लोक चिकित्सा संबंधी ज्ञान में सामूहिक चेतना की विद्यमानता है।
3. मौलिक साहित्य / श्रूत परम्परा संबंधी ज्ञान में सामूहिक चेतना विद्यमान दृष्टिगत् की गई।
4. शिल्प एवं कला संबंधी ज्ञान में सामूहिक चेतना निहित पाई गई।
5. जीवन चक्र संबंधी अनुष्ठानों में सामूहिक चेतना की विद्यमानता बनी हुई है।
6. सामूहिक व्यवहार तथा सामाजिक अन्तर्क्रियाओं तथा सामाजिक उत्सवों में सांस्कृतिक चेतना गहन रुप से विद्यमान है।
7. धार्मिक अनुष्ठानों, लोक पर्व एवं लोक त्यौहारों के अवसर पर सामूहिक चेतना अत्यंत प्रगाढ़ रुप में विद्यमान पाई गई। इन अवसरों पर व्यष्टिवाद के स्थान पर समष्टिवाद का प्रबल प्रभाव देखा गया। पर्व एवं त्यौहारों पर सभी जातियों के व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत पहचान को विस्मृत कर समूह में खो जाते हैं। यथा–होली पर्व पर पुरुषों द्वारा गोहानाकलाँ तथा निगोहाँ दोनों गाँवों में गाये जाने वाले 'फाग' के अवसर पर, जन्माष्टमी पर्व पर आयोजित किये जाने वाले कीर्तनों, नवरात्रि के अवसर पर आयोजित देवी जागरण, 'चरी' जिसमें विशेष तौर पर अनुसूचित जाति के व्यक्ति सम्मिलित होतें हैं, गोहानाकलाँ गाँव में मनाये जाने वाले 'धनतिया' अनुष्ठान में सशक्त सामूहिक चेतना का परिलक्षण होता है। इन अवसरों पर व्यक्ति अपनी पहचान भूलकर समूह में खो जाते हैं एवं उनकी अन्तर्क्रियाएँ समूह द्वारा संचालित व निर्धारित होने लगती हैं

8. धार्मिक/अनुष्ठानिक अवसरों पर आयोजित होने वाले मेलों में भी व्यक्ति इस प्रकार सहभागी बन जाते हैं कि वे अपनी व्यक्तिगत पहचान भूल जाते हैं। विशेष तौर पर सामाजिक अन्तक्रियाओं तथा सहभागिता में जातीय पहचान शिथिल एवं कम होनें लगती है तथा सामूहिक पहचान प्रभावी हो जाती है।

उक्त बिन्दुओं के गहन अध्ययन के उपरान्त निम्नलिखित सामान्यीकरण प्रतिपादित किये जा सकते हैं –

ग्रामीण समाज में लोक ज्ञान सामाजिक जीवन के प्रत्येक आयाम में विद्यमान है। यथा–कृषि पद्धतियों जोकि अनुभवजन्य भौगोलिक ज्ञान पर आधारित हैं इस संदर्भ में उत्तर भारत के गाँवों का उदाहरण उल्लेखनीय है जहाँ 'घाघ की कहावतें' आज भी प्रचलित हैं। लोकचिकित्सा, पर्यावरणीय ज्ञान, सामाजिक व्यवहार, प्रथायें एवं परम्परायें, मूर्त एवं अमूर्त कलायें भी इसका सटीक उदाहरण हैं। ग्राम्य लोक जीवन में विद्यमान यह ज्ञान पुस्तकीय ज्ञान से परे मौखिक पंरपरा के माध्यम से संचारित होता है तथा सामूहिक, साझा अनुभवों पर आधारित होता है।

ग्रामीण समाज में सामूहिक चेतना का प्रकटन त्यौहारों में सामूहिक भागीदारी, ग्राम सभा एवं पंचायत व्यवस्था तथा संकट काल में सामूहिक सहयोग एवं सहभागिता के अवसर पर होता रहता है। यह सामूहिक चेतना व्यक्तियों को समुदाय से जोड़ती है तथा सामुदायिक उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करती है। ग्राम्य समुदाय में लोक ज्ञान एवं सामूहिक चेतना परस्पर पूरक हैं। लोककथाएँ एवं लोकगीत साझा भावनायें उत्पन्न करते हैं, सामाजिक मानदंड तथा परम्परायें ज्ञान की संरक्षक हैं, परम्परायें, प्रथायें, अनुशास्तियाँ व्यक्तियों के व्यवहार को नियंत्रित करती हैं। भारतीय गाँवों में फसल की कटाई व बुवाई के समय सामूहिक श्रम का प्रचलित होना, आनुष्ठाानिक/सांस्कृतिक एवं धार्मिक अवसरों पर ग्रामवासियों का एकीकृत होना सामूहिक चेतना की विद्यमानता की ओर इंगित करता है।

लोक ज्ञान जाति, वर्ग तथा लैंगिक संरचना पर भी आधारित होता है तथापि आधुनिकता, वैश्वीकरण, प्रौद्योगिकीय नवाचारों के चलते लोकज्ञान परम्परा में विद्यमान सामूहिक चेतना भी प्रभावित हुई है अतः संक्रमणशील एवं परिवर्तनशील सामाजिक परिस्थितियों में लोकज्ञान परम्परा एवं उसमें विद्यमान सामूहिक चेतना को संरक्षित रखने की आवश्यकता में वषद्धि हुई है। सामूहिकता, स्थानीयता एवं लोकतत्वों का संरक्षण अधिक प्रासंगिक हो गया है। ये व्यक्ति को समुदाय की जड़ों से जोड़ते है एवं सतत् विकास हेतु स्थानीय समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। लोक ज्ञान एवं सामूहिक चेतना ग्राम्य समाज की आधार शिला हैं। यह सामूहिक एकता, सांस्कृतिक पहचान तथा नैतिक व्यवस्था के संरक्षक है। सामान्य जीवन में एवं दिन प्रतिदिन के जीवन में प्रौद्योगिकीय हस्तक्षेप, वैश्वीकरण के प्रभाव, व्यक्तिवाद, बाज़ारीकरण के प्रभावस्वरुप ग्रामीण समाज में सामूहिक चेतना क्षीण हो रही है। लेकिन विशिष्ट अवसरों पर इसका प्रबल रुप प्रकट हो जाता है और सामूहिक चेतना ग्राम्यता को बनाये हुए हैं।

संदर्भ

1. दुर्खीम, इमाईल, 1893, द डिविज़न ऑफ लेबर इन सोसायटी, फ्री प्रेस पेपर बैक, ट्रांस लेटेड बाय डब्लू० डी० हॉल्स, साइमन एण्ड शुट्स्टर, 1997।
2. बर्जर, पीटर० एल० एवं लकमैन, थॉमस, 1966, द सोशल कंस्ट्रक्शन ऑफ रिएलिटी, गार्डनसिटी, एन० वाई० डबलडे।
3. श्री निवास, एम० एन०, 1968, सोशल चेंज इन मॉर्डन इंडिया, युनिवर्सिटी ऑफ कैलीफोर्निया प्रेस।
4. रेडफील्ड, रॉबर्ट, 1960, द लिटिल कम्युनिटी, शिकागो युनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस (इंटरनेट अरकाइव)।
5. रेडफील्ड, रॉबर्ट, 1956, पीजेंट सोसायटी एण्ड कल्चर, एन एंथ्रोपोलॉजिकल अप्रोच टू सिविलाइजेशन, द युनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो (इंटरनेट अरकाइव)।
6. रावत, हरिकृष्ण, 2020, उच्चतर समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर।
7. मजूमदार, डी० एन०, 1958, कास्ट एण्ड कम्युनिकेशन, इन० एन० इंडियन विलेज, एशिया पब्लिशिंग हाउस।